भी धर्म या ईश्वर की निन्दा करता है या हँसी उड़ाता है, वह वस्तुतः अपने ही ईश्वर का उपहास उड़ाकर पाप का भागीदार बनता है।

देव संस्कृति की यह महानता है कि यहाँ विचार स्वातंत्र्य को बौद्धिक प्रजातंत्र को, प्रधानता मिली। यहाँ आस्तिक भी पनपते हैं तथाकथित नास्तिक भी। यहाँ चार्वाकवाद, जैनों का शून्यवाद भी वैसा ही सम्मान पाता है जैसा त्रेतवाद, द्वैतवाद तथा अद्वैतवाद। ईश्वर के स्वरूप व कल्पना के लिए पूरी छूट दे दी गयी है। माना यह गया है कि अंततः व्यक्ति नीतिमत्ता को मानेगा परमसत्ता के अनुशासन को मानेगा व जीवन में ईश्वरीय तत्वदर्शन को उतारेगा। चाहे किसी का भी नाम ले, बनेगा तो वह ईश्वरपरायण। यही कारण है कि इस्लाम, ईसाई धर्म यहाँ की उर्वर भूमि में भली-भाँति पनपते गए जब कि अपनी जन्मभूमि छोड़कर अन्य स्थानों पर उन्हें संघर्ष हिंसा द्वारा, अपना प्रचार करना पड़ा।

आदि पुरुष की कल्पना जिन ऋषियों ने की, "करमै देवाय हविषा विधेम" का उत्तर जिन्होंने एक ही विश्वाधार के विभिन्न रूपों के रूप में दिया, उनके निर्धारणों पर उँगली उठाना कुतर्की, विवादों में उलझने वाले नास्तिकों का काम है। बहुदेववाद में एकेश्वरवाद का अर्थ है परमसत्ता की विभिन्न रूप रश्मियों में उस एक ही सत्ता का दर्शन करना। यदि यह हो सके तो आस्तिकवादी मान्यताओं का विस्तार हो आस्था संकट से मोर्चा भली-भाँति लिया जा सकता है। आज की धर्म संप्रदायगत विद्वेष की स्थिति में हिन्दू अध्यात्म व देव संस्कृति ही एकमात्र समाधान है, इसमें कोई संशय नहीं।

देववाद पर एक दृष्टि

अपने देश में देवताओं की सत्ता और समस्या प्रायः उतनी ही बड़ी और उतनी ही प्रभावोत्पादक है जितनी मनुष्यों की अपनी समस्याएँ। मानवी आवश्यकताओं को जुटाने में ही हमारी अधिकांश शक्ति लगती है। उसके बाद दूसरा नम्बर देवताओं का आता है। उनके निवास के लिए विशालकाय देवालय बने हैं और निर्वाह सुविधा के लिए प्रचुर साधन लगे हैं। लाखों मनुष्यों का श्रम उनकी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए लगता है।

इतना ही नहीं उनके प्रकोप से होने वाली हानियों की कल्पना करके लोगों की मनःस्थिति भयभीत बनी रहती है। राहु, केतु, शनिश्चर आदि की ग्रहदशा की कल्पना से कितने लोग भयभीत रहते हैं। दिशाशूल, योगिनी, कालराहू आदि के भय से लोग यात्रा नहीं कर पाते और अनुकूल समय की प्रतीक्षा में ढेरों समय गुजारते हैं। जन्म कुण्डली में जो ग्रह अनिष्टकर होते हैं वे सदा अशुभ आशंका बनाये रहते हैं। कितने उपयुक्त विवाह इसी आधार पर रद्द हो जाते हैं कि ग्रह-नक्षत्र आपस में टकराते हैं। मंगली लड़कियों और मंगले लड़कों की दुर्दशा तो देखते ही बनती है। एक ही समय में विवाहों की धमाचौकड़ी और शेष समय सुनसान पड़े रहने में कितनी असुविधा होती है यह सर्वविदित है। यह सब देवताओं की अनुकूलता प्रतिकूलता के आधार पर ही होता है।

पुरुषार्थ करके अभीष्ट सफलता पाने का सीधा रास्ता छोड़कर जब अमुक देवता की अमुक प्रकार से पूजा अर्चा कर लेने पर सस्ते मूल्य में मनोकामनाएं पूरी हो जाने की भ्रान्ति में पड़े हुए न जाने कितने लोग उचित मार्ग से भटकते और शक्तियों का अपव्यय करते हैं, इसे देखकर भारी दुःख होता है।

हमें तथ्य एवं सत्य का अनुयायी होना चाहिए और देववाद की यथार्थता समझने का प्रयत्न करना चाहिए। तभी भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण प्रतिपादन देववाद का समुचित सत्परिणाम प्राप्त हो सकता है। भ्रान्तियों में उलझ कर तो हम समय और शक्ति का अपव्यय ही करते रहेंगे।

हमें देवसत्ता के सम्बन्ध में अपनी प्राचीन मान्यताओं एवं ऋषि प्रणीत स्थापनाओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए और यथार्थता का अन्वेषण करते हुए तह तक पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए। इस पर्ववेक्षण में अनेकों महत्वपूर्ण तथ्य उभर कर आते हैं। देव शब्द का अर्थ है दिव्य, श्रेष्ठ देने वाला। जो शक्तियाँ इस विशेषता से युक्त हैं वे 'देव' कहलाती हैं। इस संदर्भ में पहला स्थान भगवान का आता है उसे वैदिक वाङ्मय में इसी नाम से संबोधित

किया गया है। आगे चलकर भगवान की दिव्य शक्तियों को भी देवसंज्ञा दी गई है। ये शक्तियां दो भागों में विभक्त हैं--एक चेतनात्मक सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों के रूप में, दूसरी प्रकृति की प्रभावशाली शक्तियों के रूप में। इन दोनों की उपयोगिता ध्यान में रखी जाय, उनसे सम्पर्क साधा जाय और अधिकाधिक लाभ लिया जाय, इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए देव सम्पर्क का, देव पूजन का आधार तत्वदर्शी ऋषियों ने खड़ा किया है।

निश्चित रूप से इस विश्व ब्रह्माण्ड का अधिपति एक है। उसे सृष्टा पोषक एवं परिवर्तनकर्ता कहा गया है। ये तीनों विशेषताएँ एक ही ब्रह्मसत्ता की हैं। एक ही व्यक्ति विद्वान, बलवान और धनवान हो सकता है। एक व्यक्ति में वक्ता, गायक एवं चित्रकार की विशेषताएँ पाई जा सकती हैं। आवश्यक नहीं कि एक विशेषता ही एक व्यक्ति में हो। भगवान में उत्पादन, अभिवर्धन एवं परिवर्तन की वे तीनों ही विशेषताएं विद्यमान हैं जिनके आधार पर यह सारा सृष्टि-क्रम चल रहा है इन विशेषताओं का अलग-अलग मूल्यांकन करने में भी कोई हर्ज नहीं है।

एक ही व्यक्ति की सम्पत्ति का मूल्यांकन इनकम टैक्स के अफसर अथवा देन-लेन के इच्छुक करते हैं उनकी दृष्टि में वह व्यक्ति धनी होने के कारण मूल्यवान होता है। दूसरे, खिलाड़ी साथी उसे अपनी टीम में रखते हैं और इस आधार पर महत्व देते हैं कि वह कितना बलवान एवं खेलों के लिए आवश्यक कुशलता से सम्पन्न है। खेल प्रतियोगिताओं में उसे क्रीड़ाकौशल के आधार पर मान मिलता है। धनी होने की बात का खेलों के मैदान में कोई व्यक्ति ध्यान नहीं रखता। विद्वान मण्डली में उसके ज्ञान की गरिमा सम्मानित होती है। उसके पहलवान या धनवान होने की विशेषता पर विद्वान लोग विशेष ध्यान नहीं देते और उसकी विद्या सम्पदा को ही मान प्रदान करते हैं। इस प्रकार एक ही व्यक्ति को उसकी तीन विशेषताओं के कारण तीन क्षेत्रों में प्रथम मान मिलता है और उसकी चर्चा पृथक् आधारों पर अलग स्तरों की होती है। इतने पर भी व्यक्ति एक ही रहता है। उसे तीन मानने का आग्रह कोई नहीं करता।

ठीक इसी प्रकार एक परम देव-- परमात्मा को, तीन देवों के नाम से भी संबोधित किया गया है। उत्पादनकर्ता ब्रह्मा, अभिवर्धनकर्ता विष्णु, परिवर्तनकर्ता शिव। इन तीनों को एक दूसरे से प्रथक् एवं स्वतन्त्र मानने की तनिक भी आवश्यकता नहीं।

इसी प्रकार प्रकृति की वे अन्य महत्वपूर्ण शक्तियाँ जो सृष्टि संचालन में योगदान करती हैं देवता मानी गयी हैं। उसका वर्णन एवं स्तवन श्रुति में अनेक स्थानों पर हुआ है। जल तत्व को वरुण, हवा को वायु, ऊष्मा को अग्नि, आकाश को द्यौ, विद्युत् को इन्द्र कहा गया है। सूर्य, चन्द्र तो प्रत्यक्ष देवता हैं ही। इसी प्रकार प्रकृति की अनेक शक्तियों को अनेक देव नामों से पुकारा गया है और आवश्यकतानुसार एक ही शक्ति को कई-कई नाम भी दिए गये हैं। देवसेना में प्रकृति की महत्वपूर्ण शक्तियों की विशेष रूप से गणना की गई है।

चेतना क्षेत्र की विचारधाराएँ भी देवी अथवा देवता कही गई है। विवेक को गणेश, कला को सरस्वती, प्रज्ञा को गायत्री, प्रखरता को दुर्गा, सुरुचि को लक्ष्मी, साहस को हनुमान आदि नाम दिये गये हैं।

प्रकृति की अन्य विभूतियों को भी देव संज्ञा दी गई है। बादल-समुद्र, पर्वत, नदी, सरोवर, निर्झर जीवन के आधार हैं। धरती की गोद में हम खेलते और उसी की वनस्पतियों एवं खनिज सम्पदाओं पर जीवित रहते हैं। इन सभी को देव संज्ञा दी गई है। दैनिक उपयोग में आने वाली--दवात, कलम, पुस्तक, चक्की, चूल्हा, ऊखल, मूसल आदि तक की विशेष अवसरों पर पूजा होती है। गौ को माता कहा गया है और इसे देव संज्ञा दी गई है। गोबर, गौमूत्र एवं गोरस के प्रति श्रद्धा व्यक्त की जाती है। तुलसी, पीपल, आंवला जैसे वृक्ष, मोर, गरुड, नीलकंठ जैसे पक्षी देववाहन मानकर पूजे जाते हैं। अमुक पर्व पर कुत्ते, गधे, घोड़े भी पूजित होते हैं। चूहों से कृषि की रक्षा करने के कारण सर्पों को भी दूध पिलाने और उन्हें देवता मानने का वर्ष में एक दिन आता है।

इन मान्यताओं के पीछे यही भाव है कि प्रकृति की शक्तियाँ, चेतनात्मक सद्भावना एवं सत्प्रवृत्तियाँ--उपयोगी प्राणी एवं पदार्थ सभी को देव मान्यता से

सम्मानित किया गया है। इस सम्मान का सर्वोपरि लाभ अपनी कृतज्ञता भावना को जगाता है। यह मनुष्य की श्रेष्ठतम सद्भावनाएँ हैं जिनके सहयोग से हम सुविधाएँ पाते, जीवित रहते और आगे बढ़ते हैं। उन सबके प्रति हमें कृतज्ञ होना चाहिए। उपकार का बदला उसी रूप में न चुकाया जा सके तो भी हमें उन उपकारकर्ताओं के प्रति सच्चे हृदय से कृतज्ञ तो रहना ही चाहिए। इस सम्मान प्रदान से उन्हें लाभ भले ही न हो पर अपनी अन्तरात्मा संवेदनशील एवं पवित्र तो बनती ही है। इससे अहंकार घटता और सज्जनोचित नम्रता का विकास होता है। अपने पुरुषार्थ पर गर्व किया जा सकता है पर यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि सृष्टि के, सृष्टा के, कितने उपयोगी तत्त्व मिलकर हमारे अस्तित्व एवं आनंद में योगदान देते हैं। इस चिन्तन से श्रद्धा बढ़ती है और उपकार परम्परा के निर्वाह में अपना योगदान देने की इच्छा होती है। इस दृष्टि से देव मान्यता की, देव शक्तियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने की आवश्यकता एवं उपयोगिता सहज ही स्वीकार की जा सकती है।

यह हजार बार समझा और लाख बार समझाया जाना चाहिए कि सृष्टि की नियामक सत्ता एक है। उसमें बहुतों की साझेदारी नहीं है। इस तथ्य को शास्त्रकारों ने अत्यन्त स्पष्ट कर दिया है – "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" एक ही ब्रह्म को बहुत तरह, बहुत नाम रूपों से, कहा गया है। बहुत से नाम रूप वाले देवताओं का पृथक्-पृथक् अस्तित्व नहीं है। वे सभी एक ही सत्ता के विभिन्न नाम अथवा गुण हैं। एक ही सूर्य की किरणों में सात रंग होते हैं। इन्हें सूर्य-रथ के सात घोड़े कहा गया है और समझने की सरलता को ध्यान में रखते हुए इनकी आकृतियां अलग-अलग बना दी गई हैं। यह कलाकार की अलंकारिक कल्पना है। यथार्थता जानने के इच्छुक वैज्ञानिक को रथ का, घोड़ों का, उनके स्थान तथा आहार का कहीं कोई अता-पता नहीं चलेगा। यहाँ चित्रकार और वैज्ञानिक के बीच झंझट खड़ा हो सकता है। पर तत्त्ववेत्ता दोनों परस्पर विरोधी प्रतिपादनों के बीच तालमेल बिठा सकता है और दोनों को सही कह सकता है। कला का अपना क्षेत्र है। उसमें सत्ताओं, शक्तियों और संवेदनाओं को मूर्तिमान करने की, आकृति गढ़ने की पूरी छूट है। इससे सर्वसाधारण की कोमल भावनाओं को प्रसुप्ति से ऊँचा उठाकर जागृति में परिणत किया जा सकता है।

मन की दौड़ को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता है और न भाव संवेदनाओं पर कोई प्रतिबंध लग सकते हैं। कला को उन्मुक्त आकाश में उड़ने के लिए भावनाओं को आकृति देने की आवश्यकता पड़ती है। सारा भविष्य इसी पर ठहरा हुआ है। उपमाओं की कल्पनाओं का अपना संसार है। सुन्दरी को चन्द्रमुखी, कमल नयनी कहा गया है। रात्रि को रत्नों से जड़ी काली चादर ओढ़े सुन्दरी कहा गया है। चाँदनी से अमृत बरसता है– पपीहा पिया की रट लगाता है। चकोर चन्द्रमा के रूप पर मुग्ध है। हंस मोती चुगते हैं, पतंगा प्रेम में व्याकुल होकर दीपक पर प्राण देता है, किसी विरही की आँखें वर्षा की बूंदें बनकर बरसती हैं। स्वाति नक्षत्र की बूँदों से सीप में मोती बनते हैं, चन्दन के समीपवर्ती पौधे सुगन्धित हो जाते हैं और पुष्प की प्रशंसा में गीत गाते हैं– जैसी मृदुल कवि कल्पनाओं को तथ्य और तर्क की कसौटी पर सहज ही झुठलाया जा सकता है, पर इस प्रकार के प्रत्यक्षवाद से हमारी समूची भाव सम्पदा की इतिश्री हो जायेगी। तब किसी की अन्तःपीड़ा की मरोड़ से निकलने वाले आँसुओं की व्याख्या पानी में रहने वाले रासायनिक पदार्थों के रूप में की जाने लगेगी। इस प्रकार हम यथार्थता का प्रतिपादन तो कर सकते हैं पर भाव संवेदनाओं के सहारे खड़े हुए कोमल कल्पनाओं के संसार को ही ढहा देंगे जो मानवी अन्तरात्मा में कलात्मक कोमलता दिव्य परिकल्पना बनाये रहने के लिए नितान्त आवश्यक है।

विज्ञान और कला को अपने क्षेत्र में मान्यता मिलनी चाहिए। किसी को किसी से उलझना नहीं चाहिए और तालमेल बिठाकर एक-दूसरे के पूरक बनने का प्रयत्न करना चाहिए। देवता होते हैं या नहीं? क्या उनके प्रतिपादित स्वरूप और क्रियाकलाप सही हैं? इस प्रश्न पर संतुलित, सूक्ष्म और तात्विक दृष्टिकोण अपनाकर विचार करना होगा। जहाँ तक

कवि कल्पना का सम्बन्ध है वहाँ ईश्वर को जड़-चेतन दिव्य शक्तियों को शरीरधारी व्यक्तियों के रूप में अलंकृत करने की कलाकारिता को सराहा ही जा सकता है। इस चित्रांकन से उन दिव्यसत्ताओं की विशेषताएँ समझने में सहायता मिलती है और उनसे लाभान्वित होने का उत्साह बढ़ता है। देवी देवताओं की चित्र-विचित्र आकृतियाँ अनेक मुख, अनेक हाथ-पैर, अनेक आयुध--अद्भुत वाहन देख कर यर्थाथवादी की बुद्धि हतप्रभ हो सकती है और इस अनबूझ पहेली का हल ढूँढने में असमर्थ हो सकती है, पर जिन्होंने कबीर की 'उलटवासियाँ' के अर्थ निकाले हैं और बाल मनोरंजन की महत्वपूर्ण पद्धति 'पहेली बुझौअल' में रस लिया है वे जानते हैं कि यह प्रतिपादन अवास्तविक होते हुए भी उपयोगिता की दृष्टि से 'वास्तविकता' जितने ही महत्वपूर्ण हैं। इनमें रहस्यवाद और संगतिवाद का अद्भुत समन्वय है। देवताओं की आकृतियाँ, अनेक मुख, हाथ, आयुध वाहनों की संगति रहस्यवाद के आधार पर बिठाई जाय तो उनमें से अनेकों उपयोगी सिद्धान्त एवं प्रतिपादन सामने आकर खड़े हो जाते हैं।

गड़बड़ी तब उत्पन्न होती है जब इन काव्य अलंकारों की विवेचना वैज्ञानिक आधार पर करने का प्रयत्न किया जाता है। बाल पोथियों में लिखी कहानियों में पशु-पक्षियों के वार्तालाप जुड़े होने की बात का बुद्धिजीवी इस आधार पर विरोध नहीं करते कि 'बच्चों को मिथ्या बात बताई जा रही है। वे जानते हैं कि बाल बुद्धि के लिए ऐसी संगतियाँ आवश्यक हैं। प्रथम पुस्तक में 'अ' के लिए अनार 'आ' के लिए आम, 'इ' के लिए इमली, 'ई' के लिए ईख के चित्र बनाये जाते हैं। यथार्थवाद यहाँ उलझ सकता है और खण्डन पर उतर सकता है। 'अ' के लिए अनार ही क्यों? अजगर, अहमक, अमलताश आदि क्यों नहीं? और यदि यह सब भी सम्मिलित कर लिये जायं तो फिर यह कहा जाने लगेगा कि अज्ञान, अन्याय, अन्धकार आदि की भी 'अ' की व्याख्या में क्यों न जोड़ा जाय। ऐसे तो व्यर्थ का वितंडावाद खड़ा हो जायेगा। बच्चों को अविकसित मनःस्थिति में ज्ञान वृद्धि का जो आधार उपलब्ध था, उसे भी गंवा दिया जायेगा।

पंच तन्त्र और हितोपदेश--पुस्तकों में दी हुई कहानियों के आधार पर एक कुशल अध्यापक ने राजकुमारी को पढ़ाकर सुयोग्य बनाया था। अभी भी वे पुस्तकें चावपूर्वक पढ़ी जाती हैं और उनका संसार की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है। कहीं से भी यह विरोध खड़ा नहीं हुआ कि इन अवास्तविक कल्पनाओं का क्यों प्रसार किया जाता है। ठीक इसी प्रकार संसार भर के पुराण साहित्य में एक से एक उपयोगी किन्तु काल्पनिक प्रसंगों की भरमार है उनमें अत्युक्तियों के घटाटोप भरे पड़े हैं। हर कोई विचारशील जानता है कि पौराणिक गाथाओं के पात्र काल्पनिक तथा घटनाक्रम अवास्तविक हैं। फिर भी उनके सहारे जो उपयोगी शिक्षण प्रस्तुत किये गये हैं उन्हें ध्यान में रखते हुए पुराण साहित्य को सदा सम्मान मिलता रहेगा।

बाल पोथियों, पौराणिक कथा-गाथाओं कवि कल्पनाओं का महत्व एवं उद्देश्य समझा जाना चाहिए और सृजनकर्ताओं की कवि कल्पना के साथ जुड़ी हुई सदाशयता का लाभ उठाया जाना चाहिए। मूल तथ्य को भुलाकर जब लोग भटकना आरम्भ करते हैं तो दुहरी भूल करते हैं। एक पक्ष शुष्क यथार्थवादिता पर उतारू होकर इन काव्य संवेदनाओं को मिथ्यावाद कहता और उनके विरोध में विष उगलता है। यह शुष्क तर्कवाद है। इससे काव्य कला पर कुठाराघात होता है और जनमानस को भाव तरंगित करने का एक उपयोगी आधार नष्ट होता है। दूसरा अतिवादी पक्ष उन भोले भावुक लोगों का है जो इन काव्य प्रतिपादनों के निष्कर्ष पर ध्यान न देकर वर्णित घटनाक्रमों अथवा प्रतीक प्रतिमाओं को ही सब कुछ मान बैठता है। ऐसे ही लोग पुराण--पाठ कथा--श्रवण के महात्म्य को आकाश-पाताल जितना महत्व देते हैं और उतने भर से स्वर्ग-मुक्ति, पुण्यफल आदि न जाने क्या-क्या लाभ मिलने की कल्पना करते रहते हैं। ऐसे ही लोग देवी-देवताओं की प्रतिमाओं की सज्जा-प्रतिष्ठा और पूजा-अर्चा के घटाटोप खड़े करते हैं और सोचते हैं कि प्रस्तुत प्रतिमा के भीतर बैठा देवता इस अभ्यर्थना से प्रभावित होकर सिद्धि, चमत्कार, अनुग्रह प्रदान करेंगे और मनोवांच्छा पूर्ति का वरदान देंगे। यह दूसरी किस्म

का अतिवाद है। देव मान्यताओं के संबंध में उनके तीव्र खण्डन और उन्मूलन पर उतारू अतिवादियों की तरह वे भी असंतुलित ही रहे जायेंगे जो देवताओं को मनुष्य स्तर के सूक्ष्म शरीरधारी मानते हैं। सोचा जाता है कि देवताओं के पास तीन ही काम हैं – (१) पूजा, प्रार्थना बटोरना (२) भक्तजनों की मनोकामना पूरी करना (३) जो उपेक्षा करे उन पर बरस पड़ना और त्रास देकर भारी जुर्माना वसूल करना। इस आरोपण में यदि देवता मनुष्य जैसी सत्ता वाले होते भी होंगे तो अपने को बहुत गये गुजरे स्तर का बना दिये जाने के कारण भक्तों की मूर्खता पर क्षुब्ध और अपनी दुर्गति पर खिन्न ही होते होंगे।

हमें अतिवाद से बचना चाहिए और देववाद के सिद्धान्त के स्वरूप एवं उद्देश्य को गम्भीरतापूर्वक समझने का प्रयत्न करना चाहिए। निश्चित रूप से इस सृष्टि का नियन्ता एक ही परमेश्वर है। उसकी विभूतियों को देवी-देवता का नाम दिया गया है और उनकी विशेषता एवं उपयोगिता समझाने के लिए रूपों का निर्माण किया गया है। उन्हें व्यक्ति स्तर के, एक-दूसरे से भिन्न और स्वतन्त्र सत्ता-सम्पन्न मानना सर्वथा भ्रमपूर्ण है। फिर अमुक जातिवंश और क्षेत्र के पृथक्-पृथक् देवताओं का होना तथा अपने ही भक्तजनों तक गतिविधियाँ सीमित रखने की बात तो नितान्त उपहासास्पद है। पूजा करने वालों से प्रसन्न और न करने वालों से अप्रसन्न होने की बात तो और भी अधिक अटपटी है। देव स्तर की सत्ताएँ इतनी ओछी, दरिद्र, घटिया और संकीर्ण हो ही नहीं सकती। यदि होती तो उन्हें देवता जैसे पवित्र सम्मान से कभी सम्मानित न किया जाता। यदि प्रचलित मूढ़ मान्यताओं के अनुसार इतने असंख्य देवी देवता हुए होते और उन्होंने अपना सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, आतंकवाद, अव्यवस्थावाद फैलाया होता तो निश्चय ही सूक्ष्म जगत में गदर मच गया होता। देवता लोग आपस में ही भक्तों की छीना-झपटी के लिए लड़ते-मरते और उनका स्वच्छन्दतावाद इस ईश्वरीय कर्म व्यवस्था में पूरी तरह अन्धेर मचा देता, तब लोग सफलता के लिए उपयुक्त प्रयास करने के स्थान पर देवी-देवताओं को मनुहार का सस्ता तरीका अपना कर उल्लू सीधा कर लिया करते। विपत्ति निवारण के लिए, मनोकामना पूरी करने के लिए जब देवता की मनुहार से काम चल सकता है तो, अभीष्ट सफलताओं के लिए प्रबल पुरुषार्थ करने के झंझट में भला कोई क्यों फँसना चाहेगा ? तब पुरुषार्थ प्रक्रिया का कर्मफल मिलने की ईश्वरीय व्यवस्था का तो पूरी तरह मटियामेट ही हो जायेगा। ऐसी दशा में देवपूजा करने से बढ़कर लाभदायक और कोई धन्धा दीख ही नहीं पड़ेगा। इसी स्तर के भ्रमग्रस्त लोग देव प्रतिमाओं के आगे सिर पटकते और अपने अंग काटकर अथवा निरीह पशु-पक्षियों की बलि चढ़ाकर मनचाहे वरदान पाने की अपेक्षा करते रहते हैं। इस प्रकार के भ्रम जंजाल में उलझे हुए लोग स्वयं अपार हानि उठाते हैं और उन देवताओं को उपहासास्पद बनाते हैं जिनके भक्त होने का दावा उन्होंने किया था। पशु बलि जैसे घिनौने उपहार देकर देवता से नैतिक-अनैतिक कुछ भी काम लेने की बात पर विश्वास करना कितना गहरा किन्तु कितना बहुप्रचलित अज्ञान है यह देखकर किसी विचारशील को भारी दुख हुए बिना नहीं रह सकता।

देवता की आकृतियों, आयुधों, वाहनों और कथानकों के पीछे महत्वपूर्ण शिक्षाएँ तथा प्रेरणाएँ भरी हुई हैं। उनमें प्रकारान्तर से यह कहा गया है कि यदि इन सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों को अपनाया जा सके तो देवत्व का अनुग्रह मिल सकता है और उस आधार पर भौतिक समृद्धियों एवं आत्मिक विभूतियों का लाभ वरदान उपलब्ध हो सकता है।

उदाहरणों के लिए ब्रह्मा को लिया जा सकता है। ब्रह्मा कमल पर विराजमान हैं। जिसका कमल जैसा सुविकसित अन्तःकरण हो उसी में ब्रह्म तत्व का उद्भव होता है। चार मुख–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिए पुरुषार्थ करना, ईश्वर की प्रेरणा–आत्मचिन्तन, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण, आत्मविकास, आत्मोत्कर्ष की चार विद्याएँ। चार वर्गों–शिक्षा, सुरक्षा, समृद्धि एवं श्रमशीलता के प्रति निष्ठा। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास की चार आश्रम व्यवस्थाओं का पालन। चारों दिशाओं में ईश्वरीय सत्ता का दर्शन आदि संकेत ब्रह्म के स्वरूप के साथ जुड़े हैं।

विष्णु-शेषशायी। संसार को सब आवश्यक वस्तुयें देकर स्वयं शेष पर संतोष करते हैं। इतनी

विशाल जिम्मेदारी निभाते हुए भी शान्त रहते हैं। क्षीरसागर में मस्तिष्कीय वसा धवलता में सद्विचार वृत्ति के रूप में भगवान का निवास किन्तु प्रसुप्त स्थिति में। सहस्र फन के सर्प पर शैया, ब्रह्म रंध्र में अवस्थित सहस्र कमल की पंखुरियों का सहस्र दल कमल के रूप में चित्रण। लक्ष्मी जी का पैर दबाना, दिव्य चेतना की अनुगामिनी के रूप में विभूतियों का चरण सेविका रहना। चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म की धारणा। शंख–दिव्य उद्बोधन। चक्र–गतिशीलता, क्रियाशीलता। गदा–न्याय, दण्ड। पद्म–प्रेम पुलकन, सौन्दर्य, कोमल संवेदन, आनन्द, उल्लास का प्रतीक। विष्णु प्रतिमा की आराधन करने का तात्पर्य है इन सद्गुणों की अन्तःकरण में प्रतिष्ठापना।

गणेश-गणतंत्र के समर्थक। बड़े कान–अधिक सुननें जानने की जिज्ञासा, बड़ा पेट– आन्तरिक गम्भीरता, लम्बी नाक–यथार्थता को सूँघ कर जान लेने की क्षमता, सुविस्तृत आत्म-गौरव एवं असंदिग्ध प्रामाणिकता। एक हाथ में मोदक–मोद अर्थात् प्रसन्न, क अर्थात् करने वाला। एक हाथ में प्रसन्न कर सकने वाला मधुर प्रसाद। दूसरे हाथ में अंकुश। अंकुश अर्थात् अनुशासन। विवेक का अनुशासन रहने से अनायास ही ऋद्धि सिद्धियाँ मिलती हैं। भौतिक सिद्धियाँ और आत्मिक ऋद्धियाँ–सम्पदाएँ और विभूतियाँ गणेश पत्नी कही गयी हैं। विवेकवानों को दुहरे लाभों का मिलन स्पष्ट है। गणेश को सद्बुद्धि का देवता माना गया है। स्वस्तिक, ॐ की आकृति से भी गणेश आकृति की तुलना की जाती है।

दुर्गा-संघशक्ति। परास्त देवताओं की शक्ति को संगठित करके प्रजापति ने उसका निर्माण किया और बताया कि देवत्व को जीतना है तो उन्हें संगठित होना चाहिए। देवी ने जिन तीन प्रमुख असुरों को मारा उनके नाम महिषासुर, मधुकैटभ एवं शुंभनिशुंभ कहे गये हैं। महिषासुर, अर्थात आलस्य। मधुकैटभ अर्थात् असंयम। शुंभनिशुंभ अर्थात् लोभ मोह। आत्मशक्ति के प्रकट होने से व्यक्तिगत जीवन में यह त्रिविध असुर कुत्साओं का दमन होता है। लौकिक जगत में इन तीन असुरों की व्याख्या अज्ञान, अन्याय और अभाव के रूप में की गई है और व्यापक क्षेत्र में फैले हुए इन समस्त संकटों के मूलभूत कारणों का निराकरण दैवी त्तवों की संगठित शक्ति से हो सकना संभव है। यह संदेश दुर्गा की अंकित प्रतिमा से मिलता है।

गायत्री-दूरदर्शी विवेक प्रज्ञा की देवी। नारी में देवत्व की विशिष्टता का भान। उसके प्रति पवित्रतम श्रद्धा सद्भावना की धारणा। वाहन–हंस, नीर-क्षीर विवेक, उचित अनुचित के वर्गीकरण की प्रखरता, दाग धब्बे रहित धवल कलेवर। मोती चुगने अथवा लंघन करने की प्रवृत्ति, श्रेष्ठतम को ही स्वीकार करने की प्रतिज्ञा। एक हाथ में पुस्तक–स्वाध्याय में अगाध रूचि। दूसरे में कमंडलु–जल की शीतलता और प्रामणिकता पात्रता से भरा पूरा स्वभाव। गायत्री का दूसरा नाम सावित्री भी है। सावित्री ने सत्यवान का वरण किया था और उसे मृत्यु मुख से छुड़ाया था। इस कथा में गायत्री का अनुग्रह सत्यनिष्ठ को मिलना तथा उसका जन्म-मरण से छूटना अन्तर्निहित है। सरस्वती–विद्या की देवी। एक हाथ में पुस्तक अर्थात् साहित्य। दूसरे में वीणा अर्थात् कला। इन्हें लेखनी और वाणी भी कह सकते हैं। ज्ञान वृद्धि के यही दो प्रमुख आधार हैं। वाहन–मयूर। मयूर–मधुर भाषण में सुरुचि, सुसज्जा का, सर्पों को उदरस्थ कर जाने की वृत्ति का प्रतीक माना गया है। इन प्रवृतियों को अपनाने वाला सरस्वती का उपासक माना जा सकता है। अन्यान्य देवताओं की आकृतियों से भी इसी प्रकार की दिव्य भावनाओं का, उनकी विशेषताओं के आधार पर चित्रण किया गया है। उनके स्वरूप, आयुध वाहन, स्वभाव एवं क्रियाकलाप में पहेली बुझौअल, की तरह ऐसा अलंकारिक चित्रण है, जिसका निष्कर्ष उन सद्भावनाओं को अपनाने वाले को देव अनुग्रह से लाभान्वित होने के संकेत के रूप मिला है।

सन्तोषी माता-सन्तोष की देवी। भौतिक महत्वाकांक्षाओं की–लोकेषणा, वित्तेषणा, पुत्रेषणा से विरत रहा जाय, निर्वाह के नितान्त आवश्यक साधनों को जुटाने भर से संतुष्ट रहा जाय और अपनी क्षमताओं को आत्मिक प्रगति में–आदर्शवादी कामों में लगाया जाय, तो यह संतोषी वृत्ति कही जायेगी। इसी को अपनाकर महामानव बना जाता है। चना, गुड़ खाकर अर्थात् सस्ता सादगी का जीवनक्रम

अपनाकर गुजारा किया जाय। खटाई, मिठाई का लालच छोड़ा जाय। शुक्रवार को सन्तोषी माता का व्रत किया जाय। सन्तोष का व्रत लेने वाले जो उपलब्ध हैं उसी के लिए ईश्वर का शुकर मनायें, धन्यवाद दें और तृष्णाओं में उलझने के स्थान पर जीवन को सार्थक बनाने वाली गतिविधियां अपनायें। यही सन्तोषी माता की भक्ति है।

देवपूजन में षोडषोपचार, पंचोपचार आदि की पूजा विधि प्रयुक्त की जाती है। इनमें भी भाव संवेदनाएँ उभारना ही प्रयोजन हैं। पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान के लिए जल के चम्मच अर्पित किये जाते हैं। इसका अर्थ है सत्प्रयोजन के लिए श्रम बिन्दु समर्पित किये जाते हैं। पुरुषार्थ किया जाना है और समय दिया जाना है। यह चार चम्मच जल देवता को समर्पित करने का एक उद्देश्य शरीर शुद्धि, मन शुद्धि, व्यवहार शुद्धि और अर्थ शुद्धि भी है।

अक्षत, चावल, अन्न इसलिए अर्पित करते हैं कि हमारे कमाये अन्न कणों से, धन में से परमार्थ प्रयोजनों के लिए अंशदान नियमित रूप से होते रहना है।

पुष्प का स्वरूप है -- कोमलता, सुरुचि, मृदुल हास्य। वातावरण में उल्लास एवं तितली, मधुमक्खी, भौंरे आदि हर समीपवर्ती को अजस्र अनुदान देना। पुष्प जीवन की सार्थकता देव चरणों पर समर्पित होने में है। इसके लिए वह छिदता है और संघबद्ध होकर माला बनता है। यही दिशा देवलक्ष्य रखने वाले मनुष्य की होनी चाहिए।

दीपक--पात्रता, वर्तिका, स्नेह और ज्योति का समन्वय। दीपक किसी पात्र में बनता है, पात्र अर्थात् पात्रता--प्रामाणिकता। तेल, घी आदि चिकनाई को स्नेह कहते हैं और प्यार को भी। दीपक में उस तरह प्रत्यक्ष स्नेह भरा होता है हमारे अन्तःकरण में उसी प्रकार दिव्य, प्रेम भरा होना चाहिए। बत्ती को संस्कृत में वर्तिका कहते हैं जिसका एक अर्थ लगन भी होता है। सन्मार्ग की तत्परता एवं निष्ठा की तुलना दीपक की वर्तिका से की जा सकती है। ज्योति धारण से दीपक ज्वलन्त होता है। मानवी चेतना में सद्ज्ञान का, विवेक का प्रकाश दीप्तिमान रहेगा तो व्यक्ति स्वयं भी आलोकित रहेगा और अपने प्रभाव क्षेत्र को भी प्रकाश देगा। देवता के सन्मुख दीपक जलाकर इसी भावनिष्ठा को ज्वलन्त बनाना भक्तजनों का उद्देश्य है।

धूप-सुगन्धि का विस्तार। यशस्वी श्रद्धासिक्त, अभिनन्दनीय और अनुकरणीय जीवन प्रकिया की तुलना धूप द्वारा फैलाने वाली सुगन्धि से की जा सकती है। चन्दन की विशेषताएं वातावरण में शान्ति शीतलता उत्पन्न करना, समीप उगे हुए झाड़ झंखड़ों को अपने समान ही सुगंधित बना लेना, डालियों पर लदे रहने वाले सांप बिच्छुओं को भी शान्ति देना किन्तु उसके विष प्रभाव को स्वीकार न करना, अपनी शरीर सम्पदा की माला, धूप आदि दिव्य उपकरणों का माध्यम बनाना, काटने वाली कुल्हाड़ी को भी सुगंधित कर देना। चंदन का दूवपूजा में उपयोग होने का तात्पर्य है सर्मपणकर्ता देव उपासक इन दिव्य गुणों को अपने में धारण करने की आवश्यकता अनुभव करता है और उसके लिए प्रयत्नशील है।

नैवेद्य में मीठे पदार्थ ही प्रयुक्त होते हैं। देवता को मिठास ही प्रिय है-- मिठास का संकेत है--मधुरता। मधुर वचन, मधु व्यवहार में घुली हुई मिठास से देवता प्रसन्न होते हैं। देवत्व की झांकी सौम्य, सरल, सेवा भावी सज्जनोचित स्वभाव से की जा सकती है। नैवेद्य अर्पित करके यही स्वसंकेत अपने आपको दिये जाते हैं।

पुंगीफल, श्रीफल, ऋतुफल आदि अर्पित करने का तात्पर्य है-- कर्मनिष्ठा में प्रगाढ़ तत्परता किन्तु फल का श्रेय देवता को समर्पित करना।

वस्त्र--लज्जा ढके रहना, निर्लज्ज न बने रहना, शालीनता को निष्ठापूर्वक ओढ़े रहना। रोली-रक्त में चेहरे पर लालिमा बनाये रहना, आरोग्य और साहस की ओर इसमें अंगुलि निर्देश है। यज्ञोपवीत अर्पण अर्थात् इस पुण्य प्रतीक धामों के माध्यम से तो मानवी-गुणों के प्रति आस्था का प्रकटीकरण। सत्य, प्रेम, न्याय, संयम, अस्तेय, अपरिग्रह, शौच, स्वाध्याय एवं आस्तिक यह नौ गुण मानवता को अलंकृत करते हैं। इन्हें विकसित करने का उत्तरदायित्व कंधे पर लादा जाता है। आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता की तीन दिव्य भावनाएं यज्ञोपवीत की तीन ग्रन्थियों के आधार पर व्यवहार

में गाँठ बाँधकर समन्वित रखी जानी चाहिए। यज्ञोपवीत की बड़ी गाँठ को ब्रह्म ग्रन्थि कहते हैं। यह आदर्शवादी आस्था की ओर ब्रह्म चेतना हृदयंगम किये जाने की ओर संकेत करती है। देवता को यज्ञोपवीत अर्पित करके हम प्रकारान्तर से आत्मचेतना को ही प्रशिक्षित करते हैं। इन्हें स्वसंकेत समझा जाना चाहिए।

स्पष्ट है कि देवता व्यक्ति नहीं शक्ति होते हैं। व्यक्ति को पदार्थों की आवश्यकता हो सकती है पर देवता इस उपचार पदार्थों को लेकर क्या करेंगे? उनका इन स्वल्प मात्र में दी हुई वस्तुओं से क्या लाभ होगा ? उन्हें इन वस्तुओं की क्या और क्यों आवश्यकता होगी ? इन अति स्वल्प मूल्य की वस्तुओं को पाकर वे क्यों किसी को अपना भक्त मान लेंगे और इतने मात्र से प्रसन्न होकर क्यों किसी पर वरदान अनुग्रह की वर्षा करने लग जायेंगे ? यह प्रश्न अत्यन्त गम्भीर और विचारणीय है। देवताओं को यदि व्यक्ति मानना हो तो भी उन्हें इतना नासमझ नहीं मानना चाहिए कि इस नगण्य से उपहारों से ही किसी को वरदान पाने योग्य सत्पात्र मान लेंगे। पात्रता के अभाव में भी वरदान पाने के लिए दिये गये उपहारों को लौकिक प्रचलन में प्रयुक्त होने वाली रिश्वत से तुलना कर सकते हैं। अनाधिकारी लोग अतिरिक्त लाभ पाने के लिए इस अनैतिक प्रक्रिया को अपनाते हैं। यदि वही प्रक्रिया भक्त और भगवान के बीच चल पड़े और उसे मान्यता मिल जाय, तब समझना चाहिए कि इस क्षेत्र में भी अनैतिकता का साम्राज्य छा गया। जब सस्ते उपचारों से देव अनुग्रह का लाभ मिल सकता है तब कोई आदर्शजीवन जीने और परमार्थ प्रयोजन में त्याग बलिदान करने की कष्ट साध्य रीति अपनाने की क्यों आवश्यकता अनुभव करेगा ?

देवता का स्तोत्र पाठ करने से तात्पर्य है, प्रकारान्तर से दिव्य गुणों को महत्ता का स्मरण एक ही देवता के अनेक नाम, सौ अथवा हजार नाम दिये जाते हैं। इन नामों के अर्थों पर विचार किया जाय तो वे किन्हीं दिव्य गुण, कर्म स्वभाव के बोधक होते हैं। महिमा गान एवं प्रार्थना में भी प्रायः देवता की दिव्य विशेषताओं का उल्लेख होता है। स्तवन का तात्पर्य इतना ही है कि देवता में आरोपित सद्गुणों को हम अपने में धारण करें।

अग्नि को भी देवता माना गया है। ऋग्वेद में 'अग्निमीले पुरोहितं' कह कर उनकी स्तुति की गयी है। पुरोहित कह कर यही भाव प्रकट किया गया है कि अग्नि देव से हमें जीवन की महत्वपूर्ण शिक्षायें, प्रेरणायें प्राप्त करनी चाहिए। अग्नि प्रकाशवान् है, उसके सानिध्य से प्रकाश पाया जा सकता है। अग्नि की उष्णता से– जीवन्त प्राणवान रहने की, जड़ता निवारण की प्रेरणा मिलती है। अग्नि की लौ हमेशा ऊपर की ओर उठती है, इससे आदर्श निष्ठ–ऊर्ध्वगामी जीवन जीने की शिक्षा मिलती है। अग्नि में हर वस्तु अग्नि रूप हो जाती है, यह गुण हमें अपने सम्पर्क में आने वाले हर व्यक्ति को बिना भेदभाव किये, अपनी श्रेष्ठता का लाभ देने को प्रेरित करता है। अग्नि अपने पास कुछ नहीं रखता, सब कुछ वातावरण में बिखेर देता है, यह अपरिग्रह तथा समान वितरण का महत्वपूर्ण शिक्षण है। अन्त में भस्म शेष रह जाती है, जो 'भस्मातं शरीरं' का तत्वबोध कराती हुई सार्थक जीवन जीने की प्रेरणा देती है। अग्निदेव अथवा किन्हीं अन्य देवों के प्रति प्रयुक्त सम्बोधनों तथा स्तुतियों में इसी प्रकार की महत्वपूर्ण दिशायें भरी रहती हैं।

हनुमान चालीसा पाठ का तात्पर्य यश गान करके, हनुमान जी को फुसलाना नहीं समझा जाना चाहिए वरन् यह माना जाना चाहिए कि ब्रह्मचर्य, सत्साहस, ईश्वर भक्ति, अपरिग्रह, विनय जैसे सद्गुणों से ओतप्रोत होने की आवश्यकता भक्तजनों को, अनुभव करनी चाहिए। प्रशंसा सुनने मात्र से फूलकर कुप्पा हो जाने वाले और हर्ष आवेश में आकर, चारणों को कुछ भी उपहार देने की बात उथले सामन्तों से ही बन पड़ती है। उच्चस्तरीय देवसत्ता इतने ओछेपन का परिचय नहीं दे सकती कि चापलूसी अथवा चमचागीरी करके कोई भी उनकी हजामत बना सके।

भारतीय तत्ववेत्ताओं का देववाद की स्थापना में यही प्रयोजन रहा है कि ब्रह्म चेतना में सन्निहित, मानवी गरिमा को समुन्नत करने वाली सत्प्रवृत्तियों की महत्ता किसी को समझाई जाय और उसके प्रति असीम श्रद्धा रखने के लिए कहा जाय।

देवत्व, भावनात्मक, उत्कृष्टता का ही दूसरा नाम है। इस परिधि में जो भी गुण, कर्म, स्वभाव आते हैं उन सभी को आकृतियाँ देकर कल्पनात्मक रहस्यवाद का परिचय दिया गया है। महामनीषियों के इस उद्देश्य को समझा जा सके तो ही हम देव मान्यता और देव पूजन का समुचित लाभ उठा सकते हैं।

देववाद का एक पक्ष है दिव्य भावनाओं को अलंकारिक आकृतियां देकर उनके प्रति जन साधारण में अगाध आस्था उत्पन्न करना। उनकी स्थापना अन्तःकरण में करना और व्यवहार में लिए किये जाने वाले उपचारों का उद्देश्य है। देव उपासना से प्रेरणा पाकर मनुष्य दिव्य गुण सम्पन्न बन सके, महामनीषियों का यही उद्देश्य इस पुण्य प्रयोजन के पीछे रहा है। एक परमेश्वर के अनेक विकल्प करके भेड़ बुद्धि में भटकाने और ईश्वरीय अनुग्रह को अनावश्यक रूप से सत्ता बना देना उनका उद्देश्य रहा होगा ऐसी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।

यह अदृश्य देव शक्तियों की उच्चस्तरीय भावनाओं की बात हुई। विद्युत, प्रकाश, वर्षा, वायु आदि प्रकृति की जिन शक्तियों से हम लाभान्वित होते हैं उनके प्रति कृतज्ञतापूर्वक नमन करना अपनी कृतज्ञता प्रवृत्ति को प्रदीप्त करने के लिए आवश्यक है। यह बात उपकारी प्राणियों एवं पदार्थों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

देवत्व की सत्प्रवृत्तियों से सम्पन्न महामानवों को भी देव कहा जाता है। अधर्म को निरस्त करके धर्म की स्थापना करने वाले युग संतुलन बनाने वाली आत्माओं को 'अवतार' कहा जाता रहा है। ऋषियों, तपस्वियों और तत्वदर्शी मनीषियों को भी भूदेव, सुर आदि नामों से संबोधित किया जाता है। साधु और ब्राह्मण इसी श्रेणी में आते हैं। नामों के साथ देव शब्द जोड़ने का तात्पर्य उनमें देवत्व के आरोपण की अभिव्यक्ति एवं आकांक्षा है। भारतीय ललनाओं को देवी उपनाम दिये जाने की परम्परा है। उनके नाम के साथ देवी शब्द का उपयोग होता है। सरला देवी, शान्ति देवी, पुष्पा देवी, दया देवी, श्रद्धादेवी आदि नामों से नारी में पाई जाने वाली सहज देवत्व की विशेषता का संकेत है। कुमारिकाओं को नवरात्रि में एवं दूसरों अवसरों पर देवी का प्रतीक प्रतिनिधि मानकर पूजा जाता है। इस कन्यापूजन की बालिकाओं में रहने वाली असाधारण सौम्य सरल सहृदयता के प्रति सर्वजनीन श्रद्धाभिव्यक्ति ही कहा जा सकता है।

इतिहास पुराणों में से अनेक देवताओं और देवियों का वर्णन है जिन्होंने अपनी समस्त गतिविधियों को सदुद्देश्य में नियोजित रखा और सर्वसाधारण को आदर्शवादी प्रेरणा देने वाला अनुकरणीय जीवन जिया। इनके प्रति लोकमानस द्वारा असीम श्रद्धा की अभिव्यक्ति देव सम्मान के रूप में प्रस्तुत की गई है। ऐसे महामानवों की जयन्तियाँ हर वर्ष मनाई जाती हैं। कितने ही पर्व त्यौहार ऐसी ही स्मृतियों को सजीव करने के लिए हमारी धर्म परम्परा के अंग बनकर रह रहे हैं।

हमें देववाद के यथार्थ स्वरूप को समझना चाहिए और वैयक्तिक तथा सार्वजनिक जीवन में देवत्व के प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न करने का प्रबल प्रयत्न करना चाहिए। देवता की पूजा आराधना में जो भी प्रयत्न हो उनमें यह ध्यान रखा जाय कि आस्तिकता की श्रद्धा को दिग्भ्रान्त न होने दिया जाय। उपासना का प्रत्येक किया कलाप लोकमानस में देवत्व का प्रतीक सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों को उभारने में सहायक होना चाहिए। उन्हें अन्ध विश्वासों और मूढ़ मान्यताओं का केन्द्र नहीं बनने देना चाहिए। पाषाण प्रतिमा को देवता मानकर उन्हें छुटपुट स्तवन उपहार के सहारे प्रसन्न करने और सस्ते में बहुमूल्य वरदान पाने की प्रचलित भ्रान्तियों को जितनी जल्दी निरस्त किया जा सके उतना ही उत्तम है। यह अन्धविश्वास जब पशु बलि द्वारा देवता को प्रसन्न करने जैसे घृणित स्तर पर उतर आता है तब तो आस्तिकवाद की आत्मा ही रो पड़ती है। आज ऐसे ही अन्धविश्वासों की भरमार है। उछल कूद और खर्चीले कर्मकाण्डों की धूम से देवताओं को रिझाने के जो उपक्रम आये दिन चलते रहते हैं उन्हें देखकर इतना ही कहा जा सकता है कि देववाद की आत्मा को धकेल कर उस सिंहासन पर भ्रम जंजाल ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया है। इस अवांछनीयता को सुधारा और बदला जाना चाहिए।

देवालयों की स्थापना का उद्देश्य यह था कि उस दिव्य संस्थान द्वारा उस क्षेत्र में रचनात्मक धर्म प्रवृत्तियों का सुनियोजित संचालन होता रहे। देवता के निवास के लिए तो तनिक सा स्थान भी पर्याप्त था। इतने विशालकाय भवन तो धर्म प्रवृत्तियों के सुसंचालन को ध्यान में रखकर ही बनाये जाते थे। प्राचीनकाल में देव मन्दिर कथा सत्संगों के लिए, पाठशाला--पुस्तकालयों के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त होते थे। वहाँ धर्म सेवी व्यक्ति निवास करते और निर्वाह पाते थे। अपंग, असहायों को वहाँ आश्रय मिलता था तथा अन्यान्य सामयिक प्रेरणाओं और प्रवृत्तियों का सुसंचालन वहाँ से होता था।

आज तो वे सेवापूजा करने वालों के निवास मात्र की आवश्यकता पूरी करते हैं। भक्तजन मनौती माँगने भर के लिए आते हैं। यदि देवालयों के विशाल भवन और उनके साधन मात्र देव अकर्मण्यता तर्क सीमित न रह कर प्राचीनकाल की तरह धर्म चेतना उत्पन्न करने और लोकोपयोगी सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन में लग सकें तो देवश्रद्धा का सच्चा सदुपयोग हो सकता है और उस आधार पर पनपने वाले बहुमुखी रचनात्मक प्रयोजनों से लोकहित की आवश्यकता पूरी कर सकने वाला देववाद सच्चे अर्थों में सार्थक हो सकता है।

यदि हम सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन परिपोषण में संलग्न हों, मनुष्य में देवत्व के अवतरण का प्रयत्न करें, देव मानवों का सम्मान करें और उनसे प्रकाश ग्रहण करें तो देववाद की स्थापना का मूल प्रयोजन पूरा हो सकता है। आवश्यक नहीं कि हर देवता की स्वतन्त्र सत्ता मानी जाय और उनके नाम पर अलग--अलग अखाड़े खड़े किये जायं। एक ही सूर्य की अनेक किरणों की तरह एक ही परब्रह्म की अनेक देवशक्तियाँ मान कर पृथकता को एकता में परिणत किया जा सकता है।

आज का देववाद तथ्यों की कसौटी पर खरा नहीं उतरता, देवताओं को पूजा अर्चा का भूखा, उपहार पाकर वरदान देने और उपेक्षा करने पर संकट छाने वाले के रूप में उन्हें देखा जाता रहा तो इससे देवताओं की देववाद की ओर उनके पूजनकर्ताओं की स्थिति उपहासास्पद ही बनती चली जायेगी। हम तथ्य को समझें और उसे विवेकपूर्वक अपना कर सच्चे अध्यात्मवादी होने का परिचय दें।

देवऋण का परिशोध

देवता अनेक हैं पर बृहदारण्यक उपनिषद् के मतानुसार इनमें से तेतीस देवता ही मुख्य हैं। (एवैषामेते त्रयस्त्रिंशत्त्वेव देवाः)। यथा आठ बसु, ग्यारह रूद्र, बारह आदित्य, इन्द्र और यज्ञ। आठ वसुदेवता परोक्षतः यथाक्रम से पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, भू, भुव और स्व हैं। किंतु बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार ये सब यथाक्रम से पृथिवी, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य, स्वर्ग, चन्द्रमा और नक्षत्र हैं। पांच कर्मेन्द्रियां (मुख, हस्त, पाद, उपस्थ और वायु), पांच ज्ञानेन्द्रियां (श्रोत्र, नेत्र, नासिका, जिह्वा, त्वक्) और वागिन्द्रिय (मन) ही एकादश रूद्र देवता हैं किन्तु बृहदारण्यक के कथनानुसार दश प्राण (प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाम, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय) और आत्मा ही रूद्र देवता हैं। द्वादश आदित्य यथाक्रम से वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन एवं चैत्र हैं। इन्द्र देवता मेघ हैं और यज्ञ देवता प्रजापति है।

उपरोक्त देवताओं की पूजा को ही नित्य नैमित्तिक कर्म कहते हैं। इन्हीं कर्तव्य कर्मों द्वारा देव ऋण का परिशोध होता है। वसु और रूद्र देवताओं की पूजा को नित्य कर्म तथा आदित्य इन्द्र और यज्ञ देवताओं की पूजा को नैमित्तिक कर्म कहते हैं।

पृथिवी को पवित्र रखने का प्रयत्न करते रहना अर्थात् मकान, आंगन, हाट, बाट, घाट, तथा गांव के समस्त स्थानों को स्वच्छ एवं निर्मल रखना पृथिवी देवता की पूजा है। उसी प्रकार कूप, तालाब, नदी, नाले एवं जलपात्रों को स्वच्छ एवं निर्मल रखना, जिससे कि जल सदा सर्वदा सर्वत्र ही पवित्र अवस्था में मिल सके जल देवता की पूजा है। शुष्क काष्ट के ईंधन, स्वच्छ दीप एवं जलाने के लिये स्वच्छ तेल का व्यवहार करना जिससे कि हानिकारक धूम्र की अधिक उत्पत्ति न हो सके अग्निदेव की पूजा है। वायु को शुद्ध रखने के लिए चन्दन, कर्पूर, अष्ट